ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 92-95

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय अर्थ व्यवस्था

1. अखिलेश कुमार मौर्य
2. डॉ0 बृजेन्द्र कुमार सिंह

1.शोध अध्येता– वाणिज्य, वीर बहादंर सिंह पू0 वि0 जौनपुर, 2. शोध निर्देशक– एसो. प्रो. वाणिज्य संकाय, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर, (उ0प्र0) भारत

Received- 07 .02. 2022, Revised- 11 .02 2022, Accepted - 15.02.2022 E-mail: aaryavart2013@gmail.com

सारांशः – *भारत सरकार की औद्योगिक एवं व्यापरिक नीतियों का उद्देश्य भारत में खाद्यान्न तथा कच्चे माल के बदले में इसे ब्रिटिश निर्मित माल के बाजार के रूप में विकसित करना था। परिणामस्वरूप, भारत ने स्वयं के उद्योग लगभग नष्ट कर दिये गये और इसे धीरे–धीरे ग्रेट ब्रिटेन के कृषिगत, अन्तर्देश (Agricultural Hinterlan) में बदल दिया गया है।*

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पूर्व लगभग दो सौ वर्षों तक ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का भारत के आर्थिक जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश शासन को दो अवधियों में बांटा जा सकता है। प्रथम, 1757 से 1858 तक, जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन रहा और द्वितीय, 1858–1947 तक, जब ब्रिटिश सरकार का शासन रहा। भारत में ब्रिटिश सरकार का शासन काफी लम्बी प्रक्रिया के बाद स्थापित हुआ। इस प्रक्रिया की शुरूआत 1757 में प्लासी की लड़ाई से हो गयी थी और यह 1858 में पूरी हुयी। ब्रिटिश शासनकाल में भारत की आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी और अंग्रेजों के जमाने में भूमि पर करों का भारत बहुत ऊंचा था, जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति सोचनीय थी, भारत के स्वदेशी उद्योगों का पतन हो गया, लेकिन उनके स्थान पर आधुनिक ढंग से फैक्टरी उद्योग पर्याप्त तेजी से एवं पर्याप्त मात्रा में विकसित नहीं कियेगये। सिंचाई के साधनों पर कम बल देकर रेलों के विकास में अधिक पूंजी लगायी गयी और वह पूंजी आवश्यक किफायत से व्यय नहीं की गयी, जिससे भारतीय जनता पर उसके ब्याज आदि को चुकाने के सम्बन्ध में काफी आर्थिक भार पड़ा। इस प्रकार राजनीतिक पराधीनता की अवधि में भारत का आर्थिक पतन हुआ।

कुंजीभूत शब्द– खद्यान्न, कृषिगत, अन्तर्देश, आर्थिक जीवन, किफायत, आर्थिक दशा, कामदार कपड़ा, आत्मनिर्भर।

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत की आर्थिक दशा– सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत विश्व का एक धनी राष्ट्र माना जाता था। यहां की कृषि, उद्योग एवं व्यापार उन्नत थे। उस समय भारत मे औद्योगिक केन्द्र पाये जाते थे। भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित वस्तुओं की विदेशों में काफी मांगी थी। विभिन्न देशों से व्यापारी भारत में माल खरीदने के लिए आया करते थे। वे सोना, चांदी, हीरे आदि के बदले में भारत से सूत्री माल, तम्बाकू, नील, रेशम, शोरा, जरी का कामदार कपड़ा आदि विदेशों में ले जाते थे। इस प्रकार भारत में विदेशों से सोना–चांदी आया करता था जो देश की आर्थिक उन्नति का सूचक था।

उस समय गांव आत्मनिर्भर होते थे। उनकी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति गांव में उत्पादन करने से हो जाया करती थी। खेत बड़े होते थे। भूमि पर जन–भार अधिक नहीं था। खेतिहर मजदूरों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। डॉ0 वायलर ने 1889 में लिखा था कि किसान अपने काम में दक्ष था। उसे फसलों के फेर–बदल, बोने तथा काटने, मिट्टी और सिंचाई आदि का समुचित ज्ञान था। इस प्रकार भारतीय कृषि विकसित दशा में थी।

कृषि के अलावा स्वदेशी उद्योगों में भारत की शान और भी ऊंची थी। कताई–बुनाई भारत के राष्ट्रीय उद्योग थे। सोने–चांदी के धागों और रंगाई का काम भी उन्नत अगस्था में था। भवन–निर्माण, बढ़ईगीरी, कुम्हार का काम, चटाई बनाना, चमड़े का काम, लोहे का कार्य, जहाज–निर्माण, चीनी, नमक, नील, कागज आदि के उद्योग भी विकसित थे। स्वदेशी आयोग ने अपनी रिपोर्ट में उस समय के औद्योगिक विकास का वर्णन अग्र पंक्तियों में किया है, "जिस समय आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के जन्मस्थान पश्चिमी यूरोप में असभ्य जन–जातियां निवास करती थी, उस समय भारत अपने शासको के वैभव तथा अपने कारीगरों की उच्च कलात्मक दक्षता के लिए विख्यात था और काफी बाद की अवधि में, जब पश्चिम से साहसी व्यापारी भारत में पहली बार आये तो इस देश का औद्योगिक विकास किसी भी दृष्टि से अधिक उन्नत यूरोपीय राष्ट्रों की तुलना में घटिया नहीं था।"

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि अंग्रेजों के भारत में आने के सयम यहां का आर्थिक जीवन उन्नत था। लेकिन बाद में आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग एवं व्यापार आदि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिन्हें 'आर्थिक संक्रान्ति (Economic Transition) कहकर पुकारा गया है। इन परिवर्तनों का संक्षिप्त वर्णन नीचे किया जाता है।

ब्रिटिश शासनकाल में कृषि की दशा– अंग्रेजों ने भारत में नयी भूधारण प्रणालियों को प्रारम्भ किया और उनके शासनकाल में कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ। इनका वर्णन नीचे किया जाता है।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

1. नयी भूधारण प्रणालियां (New Land Systems) (1793–1850)– ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपनी राजनीतिक गतिविधियों को चलाने के लिए आमदनी की आवश्यकता पड़ी। कम्पनी ने यह आय भूराजस्व (संदक तमअमदनम) के रूप में प्राप्त की। इसके लिए भूधारण की विभिन्न प्रणालियां विकसित की गयी।

(अ) जमींदारी प्रथा– इसके दो रूप थे– स्थायी बन्दोबस्त और अस्थायी बन्दोबस्त। 1973 में लार्ड कार्नवालिस के प्रयत्नों से बंगाल एवं पड़ोसी क्षेत्रों में स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा लागू की गयी। बाद में यह मद्रास के कुछ भागों में लागू की गयी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत पहले के भूराजस्व एकत्र करने वालों को भूमि पर निजी सम्पत्ति के अधिकार दे दिये गये थे। ये अधिकार स्थायी तौर पर दिये गये। इसके बदले में यह तय किया गया कि वे सरकार को निश्चित मात्रा में धनराशि देते रहेंगे। आगे चलकर जमींदारों की स्थिति काफी मजबूत हो गयी और उन्होंने काश्तकारों से निश्चित मात्रा में अधिक लगान लेने चालू कर दिये, जिससे कृषिगत अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंची।

अस्थायी बन्दोबस्त को तत्कालीन आगरा, मध्यप्रात, बंगाल व संयुक्त प्रांत के कुछ भागों में अपनाया गया। इसके अन्तर्गत मालगुजारी 30 या 40 वर्ष, आदि के लिए निर्धारित की जाती थी, जिसके बाद इसे बदला जा सकता था।

(आ) रैयतवाड़ी प्रथा– इस प्रथा में राज्य और रैयत (कृषक) के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखा गया। यह शुरू में मद्रास के उन भागों में लागू की गयी, जिनमें स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा नहीं थी। बाद में यह बम्बई के अधिकांश भागों में लागू की गयी। आगे चलकर यह भारत के उत्तर–पूर्वी व उत्तर–पश्चिमी भागों में फैल गयी। रैयतवाड़ी प्रथा का उद्देश्य किसान को जमींदार के चंगुल से मुक्त करके उसे खेती में सुधार करने के लिए प्रेरित करना था। इस क्षेत्र में भी बन्दोबस्त 20 या 30 वर्षों के लिए ही किये जाते थे– बाद में उनमें परिवर्तन किया जा सकता था। रैयतवाड़ी प्रथा में जमींदार का स्थान राज्य ने ले लिया। राज्य ने लगाने बढ़ा दिये और लगान की वसूली में कड़ाई बरती गयी।

(इ) महलवाड़ी प्रथा– इसमें सरकार ने एक व्यक्ति या समुदाय से सम्बन्ध स्थापित किया, जो विभिन्न खेतों के स्वामियों की ओर से लगाने चुकाने की व्यवस्था करता। अतः लगान वसूल करने में राज्य को सहूलियत हो गयी।
यह प्रथा तत्कालीन पंजाब, संयुक्त प्रान्त और मध्य प्रान्त में अपनायी गयी। इनमें जमींदारी प्रथा एवं रैयतवाड़ी प्रथा के गुणों को मिलाने का प्रयत्न किया गयां। जमींदारी प्रथा का गुण था कि इसमें भूराजस्व को आय स्थिर थी। रैयतवाड़ी प्रथा में राज्य का काश्तकार से सीधा सम्पर्क था। इस प्रकार महलवाड़ी प्रथा में कृषि अलग–अलग जोतों पर की जाती थी, लेकिन भूराजस्व चुकाने की जिम्मेदारी गांव में प्रायः एक व्यक्ति पर डाल दी जाती थी।

विभिन्न भूधारण–प्रणालियों के परिणाम– अंग्रेजों ने भूधारण की जो प्रणालियां अपनायी, उनसे कृषि एवं कृषक को लाभ नहीं हुआ। जमींदारी क्षेत्रों में सरकार व काश्तकार के बीच मध्यस्थों का तांता लग गया और वे काश्तकार को ऊंचा लगान देने के लिए बाध्य करने लगे। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में भी राज्य ने लगान बड़ा दिये और वसूली में कठोरता बरती। गांवों में महाजनों तथा व्यापारियों का प्रभाव बढ़ गया। कृषक भूमि को गिरवी रखकर कर्ज लेने लगे और उसे चुका न पाने की स्थिति में भूमि उनके हाथ से निकलकर महाजन अथवा अन्य अकृषक वर्ग के हाथ मे जाने लगी।
कृषक की आर्थिक दशा खराब होने से वह कृषि को सुधारने में असमर्थ था। सरकार केवल अपने भूराजस्व की आय से सम्बन्ध ा रखती थी। मध्यस्थ–वर्ग किसी न किस प्रकार से अपनी आय बढ़ाने लगा था। ऐसी स्थिति में कृषि की दशा का सोचनीय होना स्वाभाविक था। डेनियल व एलिस थोर्नर ने ठीक ही कहा है, "नयी भूमि–व्यवस्था ने भूमि एवं कृषक दोनों को गतिशील (डवइपसम) बना दिया।" भूमि के स्वामी बदलने लगे और कृषक अपना पहले का भूमि का टुकड़ा छोड़कर दूसरा बदलने लगा। इससे कृषि में गिरावट आने लगी।

2. कृषि का वाणिज्यीकरण (1750–1847) कृषि के वाणिज्यीकरण का अर्थ यह है कि कृषि परिवार के उपभोग के लिए न की जाकर उपज को बाजार में बेचने के लिए की जाने लगी। नकद रूप में लगाने चुकाने के कारण कृषक की नकद आय की मांग बढ़ी। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ब्रिटेन में कपास, पटसन आदि की मांग बढ़ गयी। भारत में कुछ प्रदेशों में कृषण खाद्य फसलों (थ्ववक ब्तवचे) की जगह व्यापारिक फसले (ब्वउउमतबपंस ब्तवचे) जैसे कपास, पटसन आदि उगाने के लिए प्रेरित होने लगे। इस प्रकार कृषि में परिवर्तन जीवन–निर्वाह से वाणिज्यीकरण की तरफ हुआ और किसान बाजार के लिए फसल उगाने लगे।

रेलों के विकास ने कृषि के वाणिज्यीकरण को बढ़ावा दियां देश के आन्तरिक भागों से कृषिगत माल एकत्र करके रेलों द्वारा आसानी से बन्दरगाह तक पहुंचाया जाने लगा। पंजाब से गेहूं, बंगाल से पटसन एवं बम्बई से कपास का निर्यात भारी मात्रा में इंग्लैण्ड को किया जाने लगा। इनसे फसलों के विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिला और विभिन्न प्रदेशों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग फसले बोई जाने लगी। इस प्रकार भारतीय कृषक का भी विश्व में बाजार से सम्पर्क

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

स्थापित हो गया और उस पर विदेशी मांग का प्रभाव पड़ने लगा।

ब्रिटिश काल में उद्योगों का पतन– पहले बताया जा चुका है कि अठारहवी शताब्दी के मध्य तक भारत औद्योगिक दृष्टि से एक उन्नत राष्ट्र गिना जाता था। गांवों और नगरों में कई प्रकार के उद्योग चला करते थे। ग्रामीण उद्योग वहां के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। नगरों में धातु पत्थर एवं वस्त्रों में उच्च किस्म की कारीगरी का काम होता था और सुन्दर वस्तुएं बना करती थी। इसके अलावा देश के विभिन्न भागों में जहाज–निर्माण, लोहा, कागज और कांच के उद्योग चलाए जाते थे।

भारतीय कारीगर बारीक काम के लिए विश्व में विख्याात थे। ग्रीस के लोग ढाका की मलमल को 'गंजेविका' के नाम से पुकारते थे। कहा जाता है कि बढ़िया मलमल का बीस गज लम्बा एक गज चौड़ा धान एक अंगूठी में से निकल सकता था– उच्च श्रेणी का यह मलमल छह महीने में बनकर तैयार होता था। सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक इंग्लैण्ड में भारत से बढ़िया किस्म के सूती माल–मलमल, ठींट आदि का निर्यात किया जाता थ। भारतीय इस्पात का भी निर्यात होता था।
ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में ऐसी नीतियां अपनायी गयी जिनसे भारत के स्वदेशी उद्योगों को भारी आघात पहुंचा। इन उद्योगों का पतन निम्न कारणों से हुआ–

कम्पनी का व्यापार पर एकाधिकार– ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने शुरू मं व्यापारियों को काफी धन देकर स्वदेशी उद्योगों के माल की मांग पर एकाधिकार स्थापित करने का कोशिश की। कम्पनी इन व्यापारियों से बढ़िया किस्म का कपड़ा कम कीमत पर खरीदती थी। इससे व्यापारियों के लाभ कम हो जाते थे। बाद में ये व्यापारी कम्पनी के नौकर बन गये और बाजार भाव से कम मूल्य देकर माल खरीदने लगे जिससे बुनकरों की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गयी।

ब्रिटिश सरकार की अनुचित, औद्योगिक एवं व्यापारिक नीति– अंग्रेजों की नीति के कारण भारत से सूती माल का निर्यात तेजी से घटता गया। 1842 में वह सूती वस्त्र के निर्यातक के स्थान पर एक आयातक देश बना दिया गया। इंग्लैण्ड ने भारतीय आयात पर भारी कर लगाये और भारत में आने वाले माल पर मामूली कर लगाये। इसी भेदभाव से भारतीय उद्योगों को क्षति पहुंची। भारत में ब्रिटेन से आने वाले सूती माल पर केवल 3 1ध्2 प्रतिशत आयात–कर लगाया जाता था।

विदेशी मशीन–निर्मित सस्ते माल की प्रतिस्पर्द्धा– औद्योगिक क्रांति के बाद भारत में ब्रिटेन से सस्ता माल भारी मात्रा में आने लगा, जिससे भारतीय उद्योग नष्ट होने लगे। अंग्रेज भारत को कच्चे माल का निर्यातक और निर्मित माल का आयातक देश बनाना चाहते थे, क्योंकि इसी में उनका हित था।

अन्य कारण– देशी राज्य–दरबारों की समाप्ति से भी नगरों के कई उद्योगों को धक्का पहुंचा। अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय लोगों पर विदेशी प्रभाव बहुत बढ़ गया था। वे स्वदेशी माल के स्थान पर विदेशी माल पसंद करने लगे। आश्चर्य की बात है कि भारतीय माल की जो कुछ मांग बची, वह भी विदेशी पर्यटकों व यात्रियों के मार्फत बची और उसमें भी माल की किस्म घटा दी गयी। इस प्रकार भारतीय कला का ह्रास हुआ।

अंग्रेजों की नीतियों के कारण भारत में लाखों कारीगरों के जीविकोपार्जन के साधन खतरे में पड़ गये। वे अपने पुराने काम–धंधे खो बैठे। इसे अनौद्योगीकरण (क्म.पदकन.जतपंसप्रंजपवद) की दशा या प्रक्रिया कहकर पुकारा गया है क्योंकि बजाय इसके कि बड़े पैमाने पके नये उद्योग स्थापित किये जाते, उस समय के प्रचलित स्वदेशी उद्योग भी नष्ट कर दिये गये। कारीगर रोजी की तलाश में भूमि की ओर बढ़े, जिससे ग्रामीणीकरण (गांवों में लोगों के जाने) की प्रक्रिया तेज हो गयी। कृषि पर जनभार बढत्र गया और गांवों में मजदूरी घट गयी। इससे गांवों में भूमि का मूल्य व लगान बढ़े, भूमि का उप–विभाजन व अपखण्डन बढ़ा, अनार्थिक व अत्यधिक छोटी भू–जोतों की समस्या उत्पन्न होने लगी और ग्रामीण ऋणग्रस्तता की वृद्धि हुयी। अन्य देशों में भी औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप प्राचीन उद्योगों का पतन हुआ, लेकिन उन्होंने फैक्टरी उद्योग स्थापित करके देश के रोजगार, उत्पादन एवं आय को धक्का नहीं पहुंचने दिया। ब्रिटिश शासनकाल में आधुनिक की हानि पूरी नहीं हो सकी।

ब्रिटिश काल में आधुनिक ढंग से फैक्टरी उद्योगों का विकास– भारत मे रेलों के निर्माण ने उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन दिया। देश में कोयला, सूत्री, वस्त्र एवं पटसन उद्योग विशेष रूप से विकसित किये गये। कोयले का उत्पादन 1885 से 13 लाख टन से बढ़कर 1974 में लगभग 1.6 करोड़ टन हो गया। जूट के कारखाने 1879–80 से 22 से बढ़कर 1913–14 में 64 एवं सूती वस्त्र के कारखाने 58 से 264 हो गये। टाटा ने 1911 में लोहे और इस्पात का उत्पादन चालू कर दिया।
सन् 1923 में सरकार ने भारतीय उद्योगों के विकास के लिये 'विभेदात्मक संरक्षण (Discriminating Protection) की नीति स्वीकर की जिसमें निम्न तीन शर्तों को पूरा करने वाले उद्योगों के लिए संरक्षण की व्यवस्था की गयी। संरक्षण के लिए विदेशी माल पर आयात–शुल्क लगाये जाते थे, ताकि वह उद्योग भारत में पनप सके। ये शर्तें इस प्रकार थी– (1) संरक्षण चाहने वाले उद्योगों के पास प्राकृतिक साधन जैसे कच्चा माल, सस्ती शक्ति आदि होने चाहिए, (2) उद्योग ऐसा हो जो, संरक्षण के बिना

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

नहीं पनप सके, (3) आगे चलकर उद्योग बिना संरक्षण के विदेशी प्रतिस्पर्द्धा को सहन कर सके, अर्थात् संरक्षण थोड़े समय के लिए ही दिया जायेगा। इस प्रकार अस्थायी संरक्षण की ही व्यवस्था की गयी थी।

भारत में संरक्षण की नीति देर से और अपर्याप्त रूप से अपनायी गयी। इसमें नये उद्योगों के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया। संरक्षण से लाभ उठा कर इस्पात, सूत्री वस्त्र, चीनी, कागज, और कृत्रिम रेशम के उद्योग तो पनपे, लेकिन रासायनिक उद्योग को थोड़े समय के लिए ही संरक्षण दिया गया, इस कारण वह पर्याप्त मात्रा में उन्नति नहीं कर सका।

अंग्रेजों ने भारत में आधार भूत उद्योगों, जैसे, लोहा व इस्पात, मशीन–निर्माण, रसायन आदि के विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया। उनकी नीति सदैव भारत को खेतिहर देश बनाये रखने की रही। इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में आधुनिक ढंग के फैक्टरी उद्योगों की प्रगति अवरूद्ध रही, हालांकि देश में इनके विकास के लिए आवश्यक साधन विद्यमान थे। जिस समय जापान व अन्य देशों में वहां की सरकारें आधुनिक ढंग के औद्योगिक विकास में संलग्न थी, उस समय भारत मे विदेशी उद्योगों में गिरावट आ रही थी। इससे ज्यादा दुखद बात और क्या हो सकती थी।

ब्रिटिश शासनकाल में रेलों का विकास एवं नीति– अंगेजों ने अपने राजनीतिक एवं आर्थिक स्वार्थों के लिए भारत में रेलों का निर्माण किया। इससे उन्हें प्रशासन में सुविधा हो गयी। आवश्यकता पड़ने पर सैनिकों को शीघ्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जा सकता था। भारत में खाद्यान्न एवं कच्चे माल का निर्यात सुगम हो गया और विदेशों से निर्मित माल का आयात करके उसे भारतीय बाजारों में वितरित करना भी आसान हो गया।

सन् 1880 में 9,310 मील लम्बी रेल की लाइने डाली जा चुकी थी। 1900 में यह लम्बाई 25 हजार मील और मार्च 1915 में लगभग 35 हजार मील हो गयी। इस प्रकार भारत में रेलों का जाल तेजी से बिछाया गया। लेकिन रेलों में लगी विदेशी पूंजी पर ब्याज की गारण्टी (शुरू में 5 प्रतिशत बाद में 3 प्रतिशत) दी गयी, जिसे रेलों से मुनाफा प्राप्त न होने की स्थिति में भी भरना पड़ता था। भारतीय जनता पर कर लगाकर निर्धारित ब्याज की राशि चुकायी गयी। रेलों के निर्माण में काफी धनराशि का अपव्यय हुआ और आवश्यक किफायत से काम नहीं लिया गया। अंग्रेजों ने सिंचाई के विकास पर कम ध्यान दिया। उस समय के भारतीय राष्ट्रवादियों एवं देशभक्तों का मत है कि यदि रेलों पर व्यय की गयी राशि का कुछ अंश भी सिंचाई के साधनों पर खर्च किया जाता तो देश को अधिक लाभ पहुंचता।

प्रत्येक देश में रेलों के विकास की अवधि मे लोहें और इस्पात के उद्योग का भी विकास किया गया, लेकिन भारत में रेलों का साज–सामान विदेशों से मंगाने के कारण यहां पर लोहें और इस्पात के उद्योग के विकास नहीं किया गया। रेलों ने स्वदेशी उद्योगों के पतन में सहायता पहुंचायी, क्योंकि उन्होंने विदेशी माल से भारतीय बाजारों को पाट दिया। इस प्रकार रेलों के विकास से भारतीय हितों को इतना लाभ नहीं पहुंचा जितना ब्रिटिश हितों को। यही कारण है कि भारतीय नेताओं ने रेलों के निर्माण एवं सरकार की रेल–नीति की कड़ी आलोचना की और इसे भारतीय हितों के विरूद्ध बताया। यह अवश्य है कि आगे चलकर रेलों से कृषि, बड़े उद्योगों एवं व्यापार आदि से लाभ हुआ। अकालों के समय सहायतार्थ खाद्यान्न आदि को अकालपीड़ित स्थलों तक पहुंचाना आसान हो गया, जिससे इनकी भीषणता कम हो गयी। रेल–विकास एवं रेल–नीति के सम्बन्ध में इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इनमें काफी धन का अपव्यय किया गया और इनसे अंग्रेजों को अधिक लाभ प्राप्त हुआ। रेलों का विकास सिंचाई के साधनों की बलि देकर किया गया, जो अनुचित था। ब्रिटिश शासनकाल में भारत में आर्थिक पिछड़ेपन की प्रमुख जिम्मेदारी अंग्रेजों की भारत–विरोधी नीतियों पर डाली जा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. V.V. Bhatt, Aspects of Economic Change and Polisce in India 1800-1960, P. 44.
2. वी.वी. भट्ट की पूर्वोद्धत पुस्तक पृष्ठ 17–18 से अनूदित।
3. Pepelasis, Mears and Adelman, Economic Development Analysis and Case Studies, 1961, p. 389.
4. V.V. Bhatt, Aspects of Economic Change and Polisce in India p. 36.60 पर आधारित।

*****